किसने कहा जय किसान

प्रफुल्ल कोलख्यान

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी अस्सी प्रतिशत आबादी खेती पर निर्भर है। भारत के बारे में, सबसे पहले, इन बातों को जानने का मौका मिला था। विद्यार्थी जीवन की वास्तविक और गंभीर शुरूआत के काफी पहले ही लापरवाही से सिखाई या बताई गई ये बातें दिमाग में संस्कार बन कर जम गई थी। उसके बाद, भारत और इसकी विशेषताओं के बारे में कई और बातों को धीरे-धीरे जानने का मौका मिलता रहा। लेकिन ये सभी विशेषताएँ जैसे इन्हीं कारणों से ही ऊपजी या किसी-न-किसी रूप में इन्हीं का विस्तार प्रतीत होती रही। उन दिनों स्कूल की चर्या का प्रारंभ प्रार्थना से हुआ करता था। प्रार्थना का अंत संविधान की प्रस्तावना और भारत-माता की जय के तुमुल घोष से हुआ करता था। यहीं से 'हम भारत के लोग' और 'भारत-माता' जैसे शब्द और उन शब्दों के संभावित अथवा अपेक्षित संदर्भों की उत्सुकता का भी धीरे-धीरे दिमाग में अपना स्थान बन चुका था। इस स्थान के निर्माण में स्वाभाविक ही है कि बुद्धि से अधिक कल्पना का योगदान रहा होगा। अपनी जननी माँ से दूर रहने के कारण उनके प्रति स्वाभाविक से अधिक सचेष्टता और माँ शब्द के प्रति मन में एक प्रकार का चौकन्नापन हमेशा ही बना रहता था। उन्हीं दिनों की बात है कि भरी हुई उत्सुकता के साथ मैंने अपने पिता जी से जानना चाहा था कि 'हम भारत के लोग' क्यों हैं, ये 'भारत-माता' कौन हैं, कहाँ रहती हैं और हमलोग इनकी जय क्यों बोलते हैं। हालाँकि तब मैं शायद ही जय का अर्थ समझता रहा होऊँगा। पिता जी ने अपने तरीके से समझाने की कोशिश की थी। लेकिन, मेरे मन में बात कुछ जम नहीं रही थी। मेरे मन में अपनी इस विफलता को पढ़कर उन्हें भी यह लग गया था। इसलिए उन्होंने कहा था इसका अर्थ मैं बड़ा होकर ही जान पाऊँगा। इस स्थगित जिज्ञासा के भीतर से एक बात यह निकलकर आई थी कि जानने के लिए बड़ा होना शायद जरूरी है। तब यह बात ध्यान में नहीं आई थी कि बिना बड़ा हुए क्यों नहीं जाना जा सकता है या यह कि इन बातों को बिना जाने-माने कोई बड़ा कैसे हो सकता है।

तब साल में दो-तीन बार शादी-ब्याह, मरण-हरण या पर्व-त्यौहार के बहाने पिता के संग गाँव जाना होता था। गाँव जाने के तब मेरे लिए कई आकर्षण हुआ करते थे। मुख्य आकर्षण दो थे -- माँ और दादी। माँ इसलिए कि उन से पिताजी की शिकायत की जा सकती थी। दादी इसलिए कि उन से कहानियाँ सुनी जा सकती थी। बिल्कुल नई-नई कहानियाँ। और यह तो दादी थी जिसने तब अपने ढंग से मेरी उस जिज्ञासा को शांत किया था, यह कहकर कि असल में वही भारत माता हैं और मैं उन्हीं की जय बोलता हूँ। बाद में मुझे यह लगा कि दादी ने मुझ से ठीक नहीं कहा था। अब लगता है कि उनका ऐसा कहना ठीक नहीं होकर भी कितना ठीक था। जीवन में बहुत कुछ ऐसा भी होता है जो ठीक नहीं होकर भी वास्तव में कितना अधिक ठीक हुआ करता है।

कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत की कई तद्भव विशेषताएँ हैं। जैसे भारत की एक विशेषता है धर्म और उसके आधार पर दैनिक जीवन-यापन में ईश्वर का वर्चस्व। ठीक भी है, मानसून जिसका वास्तविक 'अर्थमंत्री' होगा अनिवार्यत: ईश्वर ही उसका वास्तविक 'प्रधानमंत्री' होगा। इसके बाद का काम अर्थात प्रधानमंत्री को ईश्वर बनाने का काम लगुए-भगुए आसानी से कर लेते हैं। इस काम में उन्हें संस्कृति के महाग्रंथ के उस अध्याय से समर्थन भी हासिल हो जाया करता है, जिस में यह वर्णित हुआ करता है कि राजा वस्तुत: ईश्वर का ही प्रतिनधि हुआ करता है। इस प्रकार भारत इस या उस रूप में ईश्वर प्रधान देश भी बन जाता है। लेकिन सत्ता और क्षमता के खेल में लगे लोग भली-भाँति जानते हैं कि चूँकि सारी सत्ता एक ही ईश्वर के हाथ में सौंपना ठीक नहीं है इसलिए राजा के भी राजा की आवश्यकता और उपयोगिता बनी रहती है। अब जब राजा ही एक नहीं हो सकता है तो ईश्वर कैसे एक हो सकता है। शंकराचार्य कहते रह गये एकं सद् विप्रं बहुधा वदंति। एक ही है, विप्र लोग अनेक बोलते हैं, अर्थात झूठ बोलते हैं। मगर किसी ने इस प्रसंग में उनकी ओर ध्यान नहीं दिया।

कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत में संयुक्त परिवार का बहुत बाद तक भी बने रहना संभव रहा। वैसे तो कोई भी कर्म एक संयुक्त प्रयास ही हुआ करता है लेकिन कृषि-कर्म अपने-आप में स्वभावत: एक संयुक्त कर्तव्य हुआ करता है। इस संयुक्ति में मनुष्य के साथ-साथ धरती, आकाश, नदी, नहर, गाय, बैल, पशु, पक्षी, कीट, पतंग यानी पूरी प्रकृति सक्रिय हुआ करती है। इसमें हिस्सा भी सब का होता है। उद्योग और नौकरी पेशा से जुड़े लोगों की तुलना में कृषि से प्राप्त होनेवाले उत्पाद का श्रेय अधिक संश्लिष्ट हुआ करता है। कृषि-कर्म के इस संश्लिष्ट प्रसंग में प्रकृति के अपने अनिवार्य संतुलन के बने रहने की और धरती के मातृत्व के चरितार्थ होने की भी अधिक संभावना बची रहती है। औद्योगिक उत्पाद का श्रेय अधिक विश्लिष्ट हुआ करता है। औद्योगिक प्रसार से संयुक्ति के लिए अवकाश कम होता चला जाता है। आज कृषि को भी उद्योग में

ढाला जा रहा है। कवि सुमित्रानंदन पंत ने बचपन में छुपकर पैसे बोए थे और जीवन के सच का एक पहलू हासिल किया था। आज किसानों के जीवन में अन्न की जगह पैसा बोने की सलाह देनेवालों का प्रभाव बढ़ा है। नतीजा, सर्वाधिक संतोषी, सहिष्णु और सब के जीवन के आधार अन्न को उपजानेवाले किसान अपने जीवन का आधार खोते जा रहे हैं। किसान आत्म हत्या तक करने पर मजबूर हो रहे हैं। संयुक्त परिवार टूटते और बिखरते चले गये हैं।

आज स्कूलों में न तो प्रार्थना है, न संविधान की प्रस्तावना के हम लोग और न ही भारत माता। न तो बच्चों के मन में उस प्रकार की जिज्ञासा है और न ही परिवार में उस दादी माँ के लिए कोई जगह है जिसमें अपने को भारत माता कहने का नैतिक साहस और अधिकार बचा हो। प्रेमचंद की बूढ़ी काकी और भीष्म साहनी के चीफ की दावत की माँ में यह बच भी कैसे सकता है? जब देश एक संयुक्त परिवार ही नहीं रहेगा तो कोई दादी माँ भारत माता कैसे हो सकती है। फटा सुथन्ना पहनकर भारत भाग्य विधाता के गुण गानेवाले हरचरना के अनाथ बच्चे विकल हो कर पूछ रहे हैं, किसने कहा जय किसान?